
प्रवचन-१४०, श्लोक-१९५-१९७, शनिवार, ज्येष्ठ कृष्ण २, दिनांक ३१-५-१९८०

नियमसार, श्लोक १९५ कलश । प्रायश्चित्त का अधिकार है । प्रायश्चित्त का अर्थ, स्वरूप जो आत्मा का, अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप आत्मा का है, उसमें एकाग्र होना और पुण्य तथा पाप के, मन-वचन-काया के शुभ-अशुभभाव को छोड़ना । हिन्दी लेना है । हिन्दी है, हों ! मन-वचन-काया से जो क्रिया होती है, उसे छोड़ना और अपने आत्मा के

स्वरूप में लीन होना, इसका नाम कायोत्सर्ग, प्रायश्चित्त और ध्यान है, इसे धर्म कहते हैं। मन-वचन-काया की क्रिया, वह कोई धर्म नहीं है। वह परद्रव्य है। अपना स्वरूप अन्दर सच्चिदानन्द सत्-त्रिकाल रहनेवाला और ज्ञानानन्द जिसका स्वभाव है, उस स्वभाव में मन-वचन-काया की क्रिया का अभाव है। इस कारण उस क्रिया को छोड़कर स्वरूप में एकाग्र होना, वह कायोत्सर्ग कहो, प्रायश्चित्त कहो, सम्यग्दर्शन कहो, ध्यान कहो, समाधि कहो, वह सब उसे लागू पड़ते हैं। देखो, पहला श्लोक, १९५

कायोत्सर्गो भवति सततं निश्चयात्संयतानां,
कायोद्भूत-प्रबलतर-तत्कर्ममुक्तेः सकाशात् ।
वाचां जल्प-प्रकर-विरतेर्मानसानां निवृत्तेः,
स्वात्मध्यानादपि च नियतं स्वात्मनिष्ठापराणाम् ॥१९५॥

श्लोकार्थः जो निरन्तर... सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा! स्वात्मनिष्ठापरायण... जो निरन्तर स्व आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप स्व आत्मा, उसमें निष्ठापरायण। स्वात्मनिष्ठा। उसमें रहकर तत्पर रहना। आहाहा! उसमें तत्पर रहना, वह कायोत्सर्ग और प्रायश्चित्त है। सामायिक भी वह, प्रतिक्रमण भी वह, प्रायश्चित्त भी वह। आनन्दस्वरूप भगवान ज्ञानमूर्ति में एकाग्र होना और निरन्तर स्वात्मनिष्ठापरायण... जिसे आत्मज्ञान हुआ हो, राग से भिन्न है, मन-वचन-काया की क्रिया से भी भिन्न है, ऐसे आत्मा को स्वात्मनिष्ठापरायण (-निज आत्मा में लीन)... अपने आत्मा में लीन है। आहाहा! गजब मार्ग है, भाई!

उन संयमियों को,... मुनि की बात ली है। सच्चे सन्त हों, भावलिंगी हों, बाह्य में तो नग्न ही हों। ऐसे सच्चे संयमियों को, काया से उत्पन्न होनेवाले... काया से उत्पन्न होनेवाली क्रिया। आहाहा! जड़ की क्रिया। हाथ-पैर के हलन-चलन की क्रिया, वह सब जड़ की क्रिया है। उस काया की क्रिया से भिन्न है। है? काया से उत्पन्न होनेवाले अति प्रबल कर्मों के... अर्थात् क्रिया। उस (-काया सम्बन्धी प्रबल क्रियाओं के) त्याग के कारण,... आहाहा! वह तो जड़, मिट्टी, धूल है। उसकी कोई भी क्रिया, वह जड़ की क्रिया है। उसका त्याग करके। आहाहा! एक बात।

दूसरी बात, वाणी के जल्पसमूह की विरति के कारण... दूसरा बोल। पहले काया की क्रिया की ओर का लक्ष्य छोड़ देना, फिर वाणी का जल्प होना - बोलना, वह

विकल्प अन्दर उत्पन्न होना, उस (जल्प) समूह की विरति, -उससे निवृत्त होना। आहाहा! इसका नाम कायोत्सर्ग है। वे तो तत्सूत्री करणेन, प्रायश्चित्त करणेन, ऐसा करके अप्पाणं ओसरे, हो गया कायोत्सर्ग। परन्तु सम्यग्दर्शन बिना कायोत्सर्ग कहाँ से आया? अभी आत्मा चिदानन्दस्वरूप है, ऐसा भान नहीं। मैं ज्ञानानन्द हूँ, तो काया की क्रिया से भी भिन्न हूँ और वाणी की क्रिया से भी भिन्न हूँ।

और तीसरे में, देखो! और मानसिक भावों की (विकल्पों की) निवृत्ति के कारण,... और मानसिक क्रिया अर्थात् मन से जो विकल्प उठता है, उससे भी मैं भिन्न हूँ। आहाहा! ऐसा मार्ग है। मन-वचन-काया तीनों अजीव हैं, जड़ हैं। उनकी क्रिया से रहित और अपने आत्मा में-स्व आत्मा में परायण, तत्पर। पर से विरति और स्व में तत्पर, पर से विरति और स्व में रक्त। पर से विरक्त और स्व में रक्त। आहाहा! पुण्य और पाप तथा मन, इन सब क्रियाओं से विरक्त और स्वरूप में रक्त, इसका नाम प्रायश्चित्त और कायोत्सर्ग और समकित तथा ज्ञान कहने में आता है। आहाहा! है ?

और मानसिक भावों की (विकल्पों की) निवृत्ति के कारण,... आहाहा! मन, वचन और काया, वह तो जड़ की क्रिया है, वह तो जड़ में है; आत्मा में वह है नहीं। मानसिक विकल्प जो उठते हैं, अन्दर मन में कल्पना उठती है, वह भी मानसिक क्रिया है, आत्मा की क्रिया नहीं। आहाहा! उससे हटकर—विरति करके। आहाहा! पहले में ऐसा लिया कि काया से उत्पन्न होनेवाले अति प्रबल कर्मों के त्याग के कारण, वाणी के जल्पसमूह की विरति के कारण और मानसिक भावों की (विकल्पों की) निवृत्ति के कारण,... तीनों के तीन शब्द भिन्न-भिन्न हैं। आहाहा! समझ में आया ?

तथा निज आत्मा के ध्यान के कारण,... अपना आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप की सत्ता, उसकी अस्ति, ज्ञानस्वरूप से अस्ति, जाननस्वरूप से उसकी अस्ति, मौजूदगी है। अनादि-अनन्त ज्ञानस्वरूप से आत्मा की मौजूदगी है। उसमें से मन-वचन-काया की क्रिया से हटकर जो ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा, उसमें लीन रहना, लीन होना, रक्त होना, पर से विरक्त होना, इसका नाम कायोत्सर्ग और प्रायश्चित्त कहने में आता है। आहाहा! यह तो कितनों ने कायोत्सर्ग किया होगा। तिकखुतो आयाणं और खोटे का खोटा। वह कहाँ कायोत्सर्ग है।

कायोत्सर्ग एक न्याय से तो ऐसा कहा न पहले, कि एक ओर भगवान आत्मा

ज्ञानस्वरूप काया, ज्ञानस्वरूपी काया और एक ओर मन, वचन और काया से लेकर, दया, दान के विकल्प से लेकर सब काया। वह जड़ काया है। काया दो प्रकार की है। एक ज्ञान काया और एक जड़ काया। जड़ काया—मन-वचन-काया और पुण्य-पाप के भाव, वह जड़ काया है। आहाहा! उससे निवृत्त होकर ज्ञानस्वरूपी जो काया आत्मा में है, उसमें लीन होना, वह कायोत्सर्ग है। अपनी काया से भिन्न है, उसका त्याग और अपनी ज्ञानस्वरूप काया में लीनता होना, इसका नाम कायोत्सर्ग कहने में आता है। आहाहा! कहीं निवृत्ति नहीं मिलती और ऐसी बात। तिकखुतो वंदामि आयाणं, उसमें आता है न?ऐसा आता है। कायोत्सर्ग करूँ। कायोत्सर्ग का भान नहीं होता और कायोत्सर्ग करूँ!

कायोत्सर्ग तो उसे होता है कि जिसे निज ज्ञानानन्दस्वरूप काया अपना स्वरूप और राग, दया-दान के विकल्प से लेकर पूरी दुनिया, वह पर काया है। उस पर काया से विरक्त और अपने स्वभावरूपी काया से रक्त, इसका नाम सामायिक, प्रायश्चित्त और कायोत्सर्ग कहते हैं। आहाहा! यहाँ तो कुछ भान न हो और कहे, पाँच सामायिक की, तीन सामायिक की। धूल में भी सामायिक नहीं है। सामायिक में समता का, वीतरागता का लाभ मिले, सामायिक में समता-वीतरागपने की आय / लाभ। तो वीतरागपने का लाभ कब मिलेगा? कब मिलेगा? वीतरागपने का लाभ कब होगा? - कि वीतरागस्वरूप आत्मा है, उसमें लीन होने से वीतराग का लाभ होता है। बाकी मन-वचन की सब क्रिया है, वह तो राग की क्रिया और जड़ की क्रिया है। उसमें तो कहीं आत्मा को लीन होना नहीं है। आहाहा! यह श्लोक कहा।

निवृत्ति के कारण,... है? तीनों शब्दों को बदला है। काया की क्रिया का त्याग, त्याग के कारण, वाणी के जल्पसमूह की विरति के कारण और मानसिक भावों की (विकल्पों की) निवृत्ति के कारण,... आहाहा! तीनों के तीन अर्थ किये हैं। उसके कारण, ये तीन बोल हुए। निज आत्मा के ध्यान के (कारण,...) आहाहा! निज आत्मा के ध्यान के कारण,... ज्ञानस्वरूपी, आनन्दस्वरूपी, वीतरागस्वरूपी आत्मा का ध्यान होना, इसका नाम कायोत्सर्ग है, इसका नाम सम्यग्दर्शनसहित आत्मा में लीनता है। आहाहा! जो कोई अभी मन-वचन-काया की क्रिया को धर्म मानता है, वह तो मिथ्यादृष्टि है, वह जैन नहीं है। आहाहा!

जैन उसे कहते हैं कि 'घट-घट अन्तर जैन बसे...' 'घट-घट अन्तर जिन बसे,

और घट-घट अन्तर जैन, मत मदिरा के पान सौं, मतवाला समझे न। 'घट-घट अन्तर जिन बसे।' जिनस्वरूप आत्मा का घट-घट में है, उसे जैन, उसका ज्ञान करके उसमें लीन होना, वह जैन। परन्तु 'मत मदिरा के पान सौं' अपने मत के आग्रह की मदिरा पी है तो उस सत्य की ओर नहीं जाता। वह बाहर के क्रियाकाण्ड में धर्म मनाता है और वहाँ का वहाँ मरता है। आहाहा! समझ में आया ?

निज आत्मा के ध्यान के कारण, निश्चय से... आहाहा! सतत कायोत्सर्ग है। एक क्षण, एक समय - ऐसा नहीं। सतत कायोत्सर्ग है। यह संयमियों की विशेष बात है। समकृति थोड़े काल अन्दर स्थिर होता है। मुनि-सच्चे मुनि हैं, वे तो अन्दर आनन्द में बहुत लीन होते हैं, उन्हें यहाँ मुनि कहते हैं। उन संयमियों को कायोत्सर्ग है। निरन्तर कायोत्सर्ग है। सतत् है न, सतत्? आहाहा! सतत् कायोत्सर्ग है। १९५ (श्लोक) (पूरा हुआ।)

श्लोक-१९६

(मालिनी)

जयति सहजतेजःपुञ्जनिर्मग्नभास्वत्-

सहज-परम-तत्त्वं मुक्त-मोहान्धकारम् ।

सहजपरमदृष्ट्या निष्ठितन्मोघजातं (?)

भवभवपरितापैः कल्पनाभिश्च मुक्तम् ॥१९६॥

(वीरछन्द)

परम तत्त्व जयवन्त सहज जो सहज तेज में सदा निमग्न।

सहज प्रकाश स्वरूप तत्त्व वह जिसने किया मोह तम भग्न ॥

वृथा हुए जो भव-भव के परिताप, सदा है उनसे दूर।

मुक्त कल्पनाओं से है जो परम दृष्टि से है परिपूर्ण ॥१९६॥

[श्लोकार्थः] सहज तेज पुंज में निमग्न ऐसा वह प्रकाशमान सहज परम तत्त्व जयवन्त है—कि जिसने मोहान्धकार को दूर किया है (अर्थात् जो मोहान्धकार रहित है), जो सहज परम दृष्टि से परिपूर्ण है और जो वृथा-उत्पन्न भवभव के परितापों से तथा कल्पनाओं से मुक्त है ॥१९६॥

श्लोक- १९६ पर प्रवचन

१९६ (श्लोक)

जयति सहजतेजःपुञ्जनिर्मग्नभास्वत्-

सहज-परम-तत्त्वं मुक्त-मोहान्धकारम् ।

सहजपरमदृष्ट्या निष्ठितन्मोघजातं (?)

भवभवपरितापैः कल्पनाभिश्च मुक्तम् ॥१९६॥

श्लोकार्थः आहाहा! सहज तेज पुंज में निमग्न... तेज। अन्दर चैतन्य का तेज। भगवान् आत्मा ज्ञान के तेज का पूर है। आहाहा! यह सब अन्धे हैं। शरीर, वाणी, मन, पुण्य और पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति यह सब अन्धे हैं, जड़ हैं। प्रभु अन्दर चैतन्य तेज का पुंज है। आहाहा! चैतन्य वस्तु जो है, वह तो तेज का पुंज है। उसमें निमग्न ऐसा वह प्रकाशमान सहज... कहते हैं कि स्वाभाविक तेज पुंज में निमग्न ऐसा प्रकाशमान। अन्तर में जो परिपूर्ण ज्ञानस्वभाव पड़ा है, उसकी एकाग्रता से उसका प्रकाश होता है। ज्ञान की पर्याय में प्रगट प्रकाश होता है। आहाहा! ऐसी बात। ज्ञान तेज से भरपूर आत्मा है, उसकी एकाग्रता होने से, उसकी पर्याय में ज्ञान का प्रकाश (प्रगट) होता है, कि जो ज्ञान स्वयं को भी जानता है और पर को भी जानता है, ऐसा प्रकाश अन्दर से होता है, उसका नाम कायोत्सर्ग और प्रायश्चित्त है। आहाहा!

सहज तेज पुंज में... प्रभु स्वाभाविक तेज पुंज है। कोई सत्ता, उसका—भगवान् आत्मा का अस्तित्व नया नहीं है। किसी ने उत्पन्न नहीं किया, नाश नहीं किया, वह तो सत्ता है, अस्तित्व है। जगत की एक चीज है। आत्मतत्त्व आनन्दकन्द प्रभु (है), ऐसा जिसने... आहाहा! सहज तेज पुंज में... स्वाभाविक तेज पुंज। अन्तर के ज्ञान का पुंज सहज भरपूर है प्रभु। उसमें जो लीन है। आहाहा! निमग्न है, ऐसा वह प्रकाशमान... ऐसा वह प्रकाशमान... राग-द्वेषादि अन्धकार है। पुण्य और पाप का विकल्प राग, राग अपने को नहीं जानता, राग को जाननेवाला तो ज्ञान है, तो ज्ञानस्वरूप जो भगवान्, वह तेज का पुंज है। वह प्रकाशमान है। आहाहा!

सहज परम तत्त्व जयवन्त है—आहाहा! मुनिराज अपनी बात भी करते हैं।

आहाहा! तेज के पुंज का प्रकाश सहज तेज जयवन्त वर्तता है। है, जयवन्त है। हमारी दृष्टि में वह आया है। आया है तो हम कहते हैं कि यह जो शाश्वत् सत्ता अनादि की है, वह जयवन्त वर्तता है। आहाहा! भाषा... **प्रकाशमान सहज परम तत्त्व जयवन्त है**— आहाहा!

यह सब तो नाशवान है—शरीर, वाणी, मन की क्रिया हलन-चलन, वह तो जड़ की क्रिया है। वह कहीं आत्मा की नहीं है। आत्मा कर नहीं सकता। हाथ-बाथ हिलावे, भाषा (होवे), उसे आत्मा कर नहीं सकता। जड़ की क्रिया में आत्मा का अस्तित्व नहीं है तो जिसमें अपना अस्तित्व नहीं, उसका कुछ नहीं कर सकता। अपना अस्तित्व अपने आनन्द और ज्ञान में है तो वहाँ आगे राग को निवृत्त करके उसमें लीन हो सकता है। आहाहा! यह किस प्रकार का उपदेश है? कभी वाड़ा में तो सुनने को मिला न हो। आहाहा! सब करते। हम भी तब पहले कहते थे न, १९ वर्ष। यह करो... यह करो... गुरु ने बताया हुआ है, ऐसा करते। फिर अन्दर से आया कि यह वस्तु तो खोटी है। बाहर की क्रिया वह धर्म, यह खोटी बात है। धर्म तो आत्मा का आनन्द और ज्ञान है, वह धर्म है। अन्तर सहजस्वरूप की दृष्टि करने पर पर्याय-अवस्था में चैतन्य का प्रकाश आवे कि जो प्रकाश स्व को जाने और रागादि को जाने, ऐसा प्रकाश, उसमें लीन होना, (वह धर्म है)। आहाहा!

प्रकाशमान सहज परम तत्त्व जयवन्त है—आहाहा! ज्ञान के तेज से भरपूर प्रभु, जैसे शक्कर मिठास से भरी है, शक्कर मिठास से भरी है; उसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञान से भरपूर है। आहाहा! ऐसी बातें। ज्ञान और आनन्द। आत्मा में सर्वांग-सर्वांग आनन्द है, आत्मा में सर्वांग ज्ञान है, आत्मा में सर्वांग वीतरागता है परन्तु उसकी दृष्टि उस पर नहीं है और अनादि से पर के ऊपर दृष्टि है। मन की, वचन की, विकल्प की, दया की, दान की, व्रत की, भक्ति की, काम-क्रोध की, भोग की, धन्धे की, स्त्री-पुत्र को प्रसन्न रखने की और धन्धा करने की (रुचि है)। पाप और पुण्य दोनों अधर्म हैं। दोनों अधर्म हैं। आहाहा!

ऐसा वह प्रकाशमान सहज परम तत्त्व जयवन्त है—आहाहा! कहते हैं कि उस चैतन्यतत्त्व का हमें भान हुआ है, इसलिए हम कहते हैं कि वह जयवन्त वर्तता है। सत्ता है, चैतन्य की सत्ता है, वह अन-उत्पत्ति अर्थात् जिसकी उत्पत्ति नहीं है, जिसका विनाश अर्थात् भविष्य में जिसका नाश नहीं है और जो वर्तमान में चैतन्य के प्रकाश से भरपूर तत्त्व है। आहाहा! वह तत्त्व जयवन्त वर्तता है। आहाहा! दया, दान के परिणाम जयवन्त वर्तते

हैं, ऐसा नहीं कहा। उन्हें तो राग कहा। आहाहा! चैतन्य के प्रकाश से भरपूर प्रभु जयवन्त वर्तता है। सत्ता-जिसकी मौजूदगी, जिसका होनापना अनादि-अनन्त मौजूद है। भगवान अनादि-अनन्त अन्दर मौजूद है। आहाहा! मौजूद है। आहाहा!

जिसने मोहान्धकार को दूर किया है... आहाहा! भगवान चैतन्य प्रकाश जयवन्त वर्तता है। उसका ध्यान और आलम्बन लेकर **जिसने मोहान्धकार को दूर किया है...** राग और द्वेष मेरे, पुण्य और पाप मेरे, मैंने दया की, मैंने पर की दया पालन की। दया पालने का भाव तो राग है, वह राग मोह है। आहाहा! उस **मोहान्धकार को दूर किया है...** दो बातें ली हैं न? पहले प्रकाशमान लिया था न? चैतन्य का प्रकाश लिया था और मोह का अन्धकार लिया। आहाहा! चैतन्य प्रकाश से भरपूर है और मोह, राग-द्वेष, वह अन्धकार है। आहाहा! अन्दर है या नहीं?

सहज तुज पुंज में निमग्न ऐसा वह प्रकाशमान सहज परम तत्त्व जयवन्त है— कि जिसने मोहान्धकार को दूर किया है (अर्थात् जो मोहान्धकार रहित है),... शब्द ऐसा है—मोहान्धकार को दूर किया है। वास्तव में मोह अन्धकार उसमें है ही नहीं। समझ में आया? प्रायश्चित्त के श्लोक आये हैं। प्रायश्चित्त के अन्तिम श्लोक। क्या कहा, समझ में आया? **कि जिसने मोहान्धकार को दूर किया है...** इसका अर्थ क्या? कि जो वस्तु है, उसमें मोह है ही नहीं। मोहान्धकार को दूर किया है, यह तो पर्याय की बात हुई। समझ में आया? परन्तु जिसमें मोहान्धकार, राग-द्वेष, दया, दान सब भाव, मोह है। अन्दर वस्तु में वह मोह है ही नहीं। वह मोह नहीं है, उस अन्धकार का नाश किया, ऐसा कहने में आया है। आहाहा!

मुमुक्षु : मोह अन्धकार को दूर करने की शक्तिवाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : है ही नहीं। मोह है ही नहीं परन्तु नाश करनेवाला कहा, इसका अर्थ यह कि उसमें नाश ही है। चैतन्य तत्त्व में मोह का नाश ही है। मोह है ही नहीं। द्रव्य को मोह नाश करना, ऐसा कहाँ होता है? उसका अर्थ यह... किया था। भाई ने अर्थ किया था न? जो मोहान्धकाररहित है। नाश का यह अर्थ है। द्रव्यस्वभाव जो चैतन्यमूर्ति सच्चिदानन्द प्रभु भगवान, अरिहन्त केवलज्ञानी त्रिलोकनाथ ने आत्मा देखा। जैन प्रकाशमय आत्मा चैतन्यप्रकाशमय। वह मोहान्धकार का नाश करनेवाले का अर्थ कि उसमें मोहान्धकार है

ही नहीं। जैन प्रकाश का चैतन्य का पुंज है, उसमें मोह है ही नहीं। आहाहा! है न? (अर्थात् जो मोहान्धकार रहित है),... अर्थ किया है। ऐसा आता है, ऐसी शैली आती है।

मुमुक्षु : दूसरा अर्थ ऐसा लिया जाता है न कि नाश करने की शक्ति रखता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, वह नहीं। उसमें है ही नहीं। फिर नाश किसका? उसमें है नहीं। उसमें है, उसका नाश करने की शक्ति होती है। उसे नाश करने की और उसे प्रगट करने की। परन्तु उसमें है ही नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! दुनिया में तो अभी सब चलता है। आहाहा! वीतराग त्रिलोकनाथ का जैनतत्त्व, वह अलौकिक तत्त्व है। ऐसा तत्त्व सर्वज्ञ के अतिरिक्त और वह भी दिगम्बर जैनधर्म के अतिरिक्त कहीं नहीं है, किसी जगह कहीं बात भी नहीं है। आहाहा! सब देखा है न। २१ वर्ष तो उसमें रहे हैं - दीक्षा में। पिताजी स्थानकवासी थे न, उसमें दीक्षा ली थी। दीक्षा के पहले भी मैं तो दुकान में शास्त्र पढ़ता था। पालेज में घर की दुकान है। भरुच और बड़ोदरा के बीच। स्थानकवासी के शास्त्र पढ़ता था। दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारांग... छोटी उम्र से। १९ वर्ष की उम्र थी। अभी ९१ हुए। अभी तो शरीर को ९१ हुए। ९० और १। १९ वर्ष की उम्र से दुकान में अभ्यास करता था। पूर्व के संस्कार थे इसलिए। आहाहा! भागीदार दुकान में बैठा हो तो मैं अन्दर पढ़ूँ। वह न हो, तब मुझे दुकान पर बैठना पड़े। अभी दुकान है न! वह दुकान अभी है। बड़ी दुकान है, चालीस लाख रुपये हैं। अभी चार लाख की आमदनी है। वह तब थी, वह दुकान। पाँच वर्ष मैंने चलायी थी। पाप, पाप चलाया था। दुकान का धन्धा अर्थात् पाप। पूरे दिन पाप, पाप और पाप। आहाहा! धर्म तो नहीं परन्तु पुण्य भी नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि पुण्य और पाप और मन-वचन-काया की क्रिया, वह अन्धकार है। अन्धकार उसमें है नहीं। प्रकाश में अन्धकार नहीं है और अन्धकार में प्रकाश नहीं है। आहाहा! समझ में आया? आचार्य को यह कहना है। भगवान चैतन्यप्रकाश का पिण्ड अन्दर है परन्तु कभी नजर नहीं की, कभी विचार नहीं किया, कभी मनन नहीं किया, कभी सुना नहीं। आहाहा! अन्दर में चैतन्यप्रकाश का पूर-नूर प्रकाशमान है और मोह, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम-क्रोध, यह सब अन्धकार है तो दोनों एक नहीं होते। नाश किया ऐसा कहा, उसका अर्थ कि वह उसमें है नहीं। आहाहा! समझ में आया? अब ऐसा कभी सुनने को मिले। वह तुम्हारा भुक्का (चूरा)। किसका चूरा? प्लास्टिक।

प्लास्टिक न ? मुम्बई, प्लास्टिक का बड़ा धन्धा चलता है। आहाहा! यह (समझने की) फुरसत कहाँ मिले ?

मैं तो हमारे दुकानदार को कहता था। दो दुकानें, हिस्सेदार थे। दो दुकानें थीं। हम दो भाई और दो भाई वे। तब मैं उन्हें कहता, यह पूरे दिन क्या करते हो ? कुछ श्रवण, मनन, विचार (कोई नहीं)। यह तो १९ वर्ष की उम्र की बात है। अभी तो ९१ वर्ष हुए। आहाहा! परन्तु क्या हो ? दुनिया तो पूरी पड़ी है। स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, कमाना, धन्धा, बस। आहाहा! धर्म सुनने जाए तो एक घण्टे ऐसा सुनावे कि कुगुरु इसका घण्टा लूट ले। ऐसा श्रीमद् कहते हैं क्योंकि वे पुण्य में, दया-दान में, व्रत में धर्म मनावे तो इसका एक घण्टा लूट लिया। आहाहा!

यहाँ कहते हैं... आहाहा! मोहान्धकाररहित है। भगवान आत्मा प्रकाश की मूर्ति है और रागादि अन्धकार का उसमें अभाव है। आहाहा! उस अन्धकार में प्रकाश नहीं और प्रकाशस्वरूप भगवान आत्मा में अन्धकार नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। **सहज परम दृष्टि से परिपूर्ण है...** आहाहा! यदि सम्यग्दर्शन से आत्मा को देखो, सहज निर्मल निर्विकारी निश्चय सम्यग्दर्शन से देखो तो वह परिपूर्ण है। भगवान आत्मा परिपूर्ण है। वस्तु है, वह परिपूर्ण है। वस्तु है, वह अपूर्ण और विकारी नहीं होती। वह तो अज्ञानभाव से अनादिकाल से लक्ष्य में नहीं लिया, इसलिए भटकता है। वस्तु है, वह परिपूर्ण है। यह दृष्टि कही, हों! कही न ? **सहज परम दृष्टि से परिपूर्ण है...** उसमें दृष्टि लिये बिना परिपूर्ण है, इसका ख्याल कहाँ से आया ? आहाहा! यह परिपूर्ण है, वह ख्याल में आये बिना परिपूर्ण है, यह आया कहाँ से ? जिस चीज़ का ज्ञान में ख्याल (नहीं) आयी, उसकी प्रतीति कैसी ? जिस ज्ञान में यह चीज़ ऐसी है, ऐसा ख्याल आये बिना उसकी प्रतीति कैसी ? अन्धश्रद्धा है ? अन्ध मान्यता (करनी है) ? आहाहा! है तो (बात) लॉजिक से परन्तु बहुत कठिन बातें। आहाहा!

कहते हैं कि **सहज परम दृष्टि से...** अर्थात् समकित। स्वाभाविक समकित। शुद्ध परमात्मा-आत्मा की प्रतीति और अनुभव। अनुभवसहित प्रतीति। इस दृष्टि से प्रभु परिपूर्ण है। आहाहा! पर्याय में अपूर्णता है, परन्तु वस्तुरूप से परिपूर्ण है। आहाहा! समझ में आया ? **सहज परम दृष्टि से परिपूर्ण है...** स्वाभाविक परम दृष्टि, कृत्रिम नहीं। अन्तर में से जागृत हुआ, चैतन्य को झिंझोड़ कर जागृत हुआ और अन्धकार का जहाँ नाश हुआ। भले थोड़ा

रहा, परन्तु अन्दर मेरी चीज़ में वह नहीं, ऐसी चीज़ में जहाँ दृष्टि हुई तो उस दृष्टि का विषय परिपूर्ण है। आहाहा! भगवान आत्मा दृष्टि का विषय परिपूर्ण है। आहाहा!

ऐसा उपदेश और ऐसी बातें। इसमें एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया, त्रिइन्द्रिया, दया पालना, छह काय की दया पालना, छह काय का पीर और यह सब कहाँ आया? वह सब अज्ञान है। छह काय की दया पालूँ, यह माननेवाला मिथ्यादृष्टि है; जैन नहीं, क्योंकि एक तत्त्व दूसरे तत्त्व को कुछ कर नहीं सकता। स्पर्श नहीं करता। एक तत्त्व दूसरे तत्त्व को छूता-स्पर्शता नहीं है और अज्ञानी मानता है कि मैं इसकी दया पालता हूँ, वह तो मिथ्यात्व है परन्तु दया पालने का भाव जो है, वह भी राग और मोह है। आहाहा! क्योंकि पर के ऊपर लक्ष्य है, इसलिए राग है, हिंसा है। उससे रहित भगवान का चैतन्यप्रकाश, उस अन्धकार से रहित है। आहाहा! दया का भाव, वह अन्धकार है। गजब बात है न! यह तो सब दया पालने चल निकले बहुत। मण्डली के नायक हो, दो-पाँच लाख इकट्ठे करके अपने गौशाला बनाओ, बकरों को सम्हालो और अमुक... वह सब क्रियाएँ जड़ की हैं, बापू! भाई! तुझे खबर नहीं। प्रभु! तू तो प्रकाश का पुंज है। यह जो होता है, उसे पररूप से जाने। परन्तु होता है उसे स्व-रूप से माने, ऐसा नहीं है। आहाहा!

स्वाभाविक परम दृष्टि से परिपूर्ण है... दृष्टि में परिपूर्ण लिया। देखा? आहाहा! जो सम्यग्दर्शन हुआ, उसमें आत्मा परिपूर्ण मानने में आता है। सम्यग्दर्शन का विषय सम्यग्दर्शन नहीं है। सम्यग्दर्शन का विषय परिपूर्ण तत्त्व है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन का विषय सम्यग्दर्शन नहीं है, क्योंकि वह तो पर्याय है। उस सम्यग्दर्शन का विषय परिपूर्ण तत्त्व है। आहाहा! सहज परम दृष्टि से परिपूर्ण है... स्वाभाविक सम्यग्दर्शन... आहाहा! उससे तो भगवान परिपूर्ण है।

और जो वृथा-उत्पन्न भवभव के परितापों से... आहाहा! भगवान है तो परिपूर्ण ऐसा। वृथा-उत्पन्न भवभव के... भव-भव के कारण जो विकारभाव... आहाहा! चाहे तो दया, दान, भक्ति का भाव भी भव का कारण है। भव मिलेगा, संसार मिलेगा। आहाहा! अरे रे! खबर नहीं, प्रभु! चैतन्यप्रकाश में दया का भाव राग है, वह तो हिंसा है। आहाहा! स्वरूप की हिंसा है, उसे धर्म मानता है। इसे कहाँ जाना? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि स्वाभाविक परमदृष्टि जो है, उससे वस्तु परिपूर्ण है। आहाहा!

दृष्टि का विषय परिपूर्ण है। आहाहा! और जो वृथा-व्यर्थ का, कहते हैं। उत्पन्न भवभव के परितापों से... आहाहा! भव-भव के ताप का दुःख। राग और द्वेष, दया और दान, भक्ति और पूजा, काम और क्रोध, भोग और धन्धा, वह सब अकेला पाप तथा पुण्य दोनों भव-भव का परिताप है। उसका फल भव-भव के परिताप में भटकने का है। आहाहा! कठिन बात, प्रभु! नयों ने तो अभी कान से सुनी न हो। है ऐसी बात है।

यहाँ तो ९१ वर्ष हुए। पैंतालीस वर्ष तो यहाँ सोनगढ़ में हुए। पैंतालीस वर्ष में आये थे। आहाहा! यह तो पहले छोटी १९ वर्ष की उम्र से यह सब है। दस वर्ष की उम्र से तो सामायिक, प्रौषध सब किया था। दस वर्ष की उम्र से, आहाहा! और रात्रि भोजन का त्याग भी आजीवन का (संवत्) १९६५ के वर्ष। १९६५ के वर्ष से आजीवन रात्रि में पानी की बूँद नहीं, आहार नहीं और १९६५ के वर्ष से अथाणां नहीं। अथाणां समझे। अचार कहते हैं न अचार? उसमें जीव गिरते हैं। बरनी में रहता है न? बरनी में अचार रहता है। उसमें जो ऊपर कपड़ा रहे और ढक्कन हो, तो कपड़ा मैला होता है। हाथ छुए, इसलिए बहुत मैला होवे तो उसमें कंथवा होते हैं। यह सब नजरों से देखा है। हमारी दुकान है, वहाँ हमने नजरों से देखा था। अरे! यह अचार! अपने नहीं खाया जाएगा। जैन को ऐसा कंथवा गिरा हुआ (अचार नहीं खाया जाता)। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं कि वृथा-उत्पन्न भवभव के परितापों से... व्यर्थ के भव-भव के परिताप के परिणाम को करता है। आहाहा! परिपूर्ण भगवान आत्मा की दृष्टि नहीं करता और यह वृथा... आहाहा! व्यर्थ का। यह वस्तु अन्दर पड़ी है। भगवान मूर्ति अकेला प्रकाश का पुंज पड़ा है। तू उसके सन्मुख नहीं देखता, इसलिए तुझे दिखायी नहीं देता। अकेला चैतन्य का पुंज है। जैसे शक्कर की डली पूरी मिठास से भरी होती है, वैसे यह भगवान ज्ञान और आनन्द से भरपूर डली है। यह बड़ी गाँठ है। शरीर से भिन्न है। यह (शरीर) तो मिट्टी-धूल है। मन से भिन्न, वाणी से भिन्न, काया से भिन्न है। आहाहा!

वृथा... अरे! प्रभु! तू परिपूर्ण है। यदि दृष्टि दे तो तुझे परिपूर्ण दिखायी देगा परन्तु व्यर्थ का पुण्य और पाप, राग-द्वेष करके भव-भव के परिताप को सहन करता है। भव-भव में दुःख है। किसी भी भव में सुख नहीं है। देव को भी दुःख है। यह करोड़पति, अरबोंपति मनुष्य है, वह सब बेचारे दुःखी हैं, क्योंकि यह पैसे मेरे - ऐसी मान्यता वह

महामिथ्यात्व का महादुःख है। आहाहा! अभी अफ्रीका गये थे न? अफ्रीका में छब्बीस दिन रहे, नैरोबी। पैसेवाले, बहुत पैसा। एक गाँव में साढ़े चार सौ तो करोड़पति हैं। साढ़े चार सौ करोड़पति और पन्द्रह अरबपति हैं। तुम्हारे महाजन। वह बेचारा आया था। वह अरबपति श्वेताम्बर आया था। महाराज! यह सब फेरफार... हमारे और इन्हें... मैंने कहा तत्त्व की दृष्टि करो, फिर समझ में आयेगा। तत्त्व की दृष्टि समझे बिना तुम्हारे अरब-बरब धूल में कुछ नहीं हैं। ऐसे अरबपति तो वहाँ नैरोबी में पन्द्रह पड़े हैं। आहाहा! छब्बीस दिन वहाँ रहे। लोगों को प्रेम बहुत। सब महाजन आते थे। बड़ी सभा। अपनी गुजराती भाषा। सवेरे-दोपहर सब सुनते। रात्रि को वहाँ चर्चा रहती थी। पौन घण्टे रहती थी। आहाहा!

क्या कहते हैं? आहाहा! अरे! दृष्टि में परिपूर्ण विषय परमात्मा अन्दर पड़ा है, उसके सन्मुख देखता नहीं। वृथा-व्यर्थ का। भवभव के परितापों से तथा कल्पनाओं से मुक्त है। और तू करता है व्यर्थ का। है? वृथा-उत्पन्न भवभव के परितापों से तथा कल्पनाओं से मुक्त है। प्रभु! आहाहा! कब? मुक्त होगा तब? नहीं, नहीं अभी मुक्त है। आहाहा! है? वृथा-उत्पन्न भवभव के परितापों से तथा कल्पनाओं से मुक्त है। क्योंकि परिपूर्ण वस्तु है। परिपूर्ण वस्तु है, उसमें परवस्तु, आताप और ताप और दया, दान, यह सब विकल्प उसमें नहीं है। आहाहा! दो श्लोक हुए।

श्लोक-१९७

(मालिनी)

भवभवसुखमल्पं कल्पनामात्ररम्यं,
तदखिलमपि नित्यं सन्त्यजाम्यात्मशक्त्या ।
सहज-परम-सौख्यं चिच्चमत्कार-मात्रं,
स्फुटित-निज-विलासं सर्वदा चेतयेऽहम् ॥१९७॥

(वीरछन्द)

तुच्छ और जो मात्र कल्पना में ही लगता है रमणीय।
भव-भव का सुख मैं सब सम्यक् तजता आत्मशक्ति से नित्य ॥

प्रगट हुआ है निज विलास जिसका जो परम सौख्य वाला ।

चेतन-चमत्कारमय उसका सदा अनुभवन मैं करता ॥१९७॥

[श्लोकार्थः] अल्प (-तुच्छ) और कल्पनामात्ररम्य (-मात्र कल्पना से ही रमणीय लगनेवाला) ऐसा जो भवभव का सुख, वह सब मैं आत्मशक्ति से नित्य सम्यक् प्रकार से छोड़ता हूँ; (और) जिसका निज विलास प्रगट हुआ है, जो सहज परम सौख्यवाला है तथा जो चैतन्यचमत्कारमात्र है, उसका (-उस आत्मतत्त्व का) मैं सर्वदा अनुभवन करता हूँ ॥१९७॥

श्लोक- १९७ पर प्रवचन

१९७। १९७ है न ?

भवभवसुखमल्पं कल्पनामात्ररम्यं,

तदखिलमपि नित्यं सन्त्यजाम्यात्मशक्त्या ।

सहज-परम-सौख्यं चिच्चमत्कार-मात्रं,

स्फुटित-निज-विलासं सर्वदा चेतयेऽहम् ॥१९७॥

आहाहा! १९७ आया न ?

श्लोकार्थः अल्प (-तुच्छ) और कल्पनामात्र... आहाहा! यह भव-भव का सुख, तेरे अरबोंपति का, देव का, राजा का... आहाहा! एक अल्प (-तुच्छ) और कल्पनामात्ररम्य (-मात्र कल्पना से ही रमणीय लगनेवाला)... वस्तु रमणीय नहीं है । मन-वचन-काया में, भोग में कहीं रमणीय नहीं है । मन की कल्पना से रमणीय मानकर दुःखी होता है । आहाहा! यह तो भाई! संसार छोड़े तब हो, परन्तु पहले अभी अन्दर निर्णय तो कर । छोड़े बाद में । समझे बिना क्या छोड़े । यह बुद्धि बिना के बाबा हो गये । सम्यग्दर्शन नहीं और बाबा-साधु हो गये । आहाहा !

यहाँ कहते हैं अल्प (-तुच्छ) और कल्पनामात्ररम्य (-मात्र कल्पना से ही रमणीय लगनेवाला) ऐसा जो भवभव का सुख... आहाहा! उसमें मनुष्य, राजा, देव सब आ गये । सब दुःखी हैं । आहाहा! चारों गति (के) दुःखी । चार गति है । नरकगति, तिर्यचगति, मनुष्यगति, देवगति । चारों गति दुःखी है । आहाहा! नरक के अन्दर अनन्त

बार गया, वहाँ संयोग के लक्ष्य से दुःखी, दुःखी और दुःखी। स्वभाव का लक्ष्य नहीं। वहाँ संयोग यह मिला... यह मिला, मुझे अग्नि पड़ी। दुःखी। मनुष्य ऐसे खड़ा है और गाय-भैंस ऐसे आड़े हैं क्योंकि बहुत वक्रता की है। मनुष्य ऐसा है और वे आड़े हैं। भगवान कहते हैं कि बहुत वक्रता की है। क्रोध, मान, माया, लोभ और वक्रता इतनी की है कि शरीर आड़ा हो गया। आत्मा तो उल्टा है ही वह। आहाहा! मनुष्य हुआ तो इस भोग में, विषय में, इज्जत में, कीर्ति में घुस गया। देव में गया, वहाँ सुख की कल्पना में घुस गया। आहाहा! चारों गति में दुःख है। आहाहा! यहाँ तो मानो पाँच-पच्चीस लाख करोड़, दो करोड़ हो, वहाँ तो हमारे रिश्तेदार सुखी हैं। लड़की का वर होशियार है। पाँच करोड़ रुपये हैं और सुखी है। धूल में भी नहीं है। अब सुन न! आहाहा! ऐसी वृथा कल्पनाएँ हैं, उनसे तो मुक्तस्वरूप है। ऐसी कल्पना-फल्पना आत्मा में है नहीं। आहाहा! अरे रे! यह कौन माने।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु माने कौन? पूर्व-पश्चिम का अन्तर है। सम्प्रदाय में बात चलती है, उससे बात एकदम दूसरी है। यह तो छोड़ा है, तब खबर है न; इसलिए छोड़ा न! पैतालीस वर्ष यहाँ हुए। वहाँ सब किया था। अनेक क्रियाकाण्ड सब किया था। जितना था (सब)। उसमें धर्म माना था। आहाहा!

भगवान आत्मा चैतन्य के प्रकाश का पूर और नूर, वृथा भव-भव के ताप में पड़ा है, परन्तु उससे तो मुक्त है, प्रभु! आहाहा! चौरासी के भव-भव के ताप से तो मुक्त है, प्रभु! आहाहा! आचार्य महाराज जीवों को प्रभु कहकर बुलाते हैं। भगवान कहकर बुलाते हैं। प्रभु! तू भगवान है, तू भगवान है। भगवान है तो पर्याय में भगवान होगा। आहाहा! सब आत्मा को भगवानरूप से तो बुलाते हैं। छोटा-बड़ा अन्दर अन्तर भगवान तेरा स्वरूप है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं, **भवभव का सुख वह सब मैं आत्मशक्ति से नित्य सम्यक् प्रकार से छोड़ता हूँ;...** मुनिराज कहते हैं कि भव-भव के दुःख का कारण जो विकार, उसे मैं छोड़ता हूँ। और प्रभु को मैं ग्रहण करता हूँ। आहाहा! गजब बातें, भाई! है? आहाहा! **ऐसा जो भवभव का सुख...** रमणीय लगनेवाला मात्र कल्पनारम्य। वह सब मैं आत्मशक्ति

से नित्य सम्यक् प्रकार से छोड़ता हूँ;... देखो ! आत्मशक्ति से । आत्मा की सामर्थ्य द्वारा, मैं आनन्द और ज्ञान हूँ, इसकी सामर्थ्य द्वारा उस भव-भव के सुख का कारण जो विकार, उसे छोड़ता हूँ । आहाहा ! उसे मैं छोड़ता हूँ । आहाहा ! हिन्दी भाई आये हैं न, जरा हिन्दी... परन्तु अपने गुजराती मूल हो, इसलिए आ जाती है । आहाहा !

आत्मशक्ति से नित्य सम्यक् प्रकार से छोड़ता हूँ;... आहाहा ! छोड़ता हूँ और छोड़नेयोग्य, ऐसा धार रखा है, ऐसा नहीं । आहाहा ! प्रभु अन्दर आनन्द का नाथ, आनन्द और ज्ञान और शान्ति के सागर से परिपूर्ण भरपूर प्रभु, वह जो दृष्टि का विषय है, उस परिपूर्ण दृष्टि के कारण से भव के कारण जो परिताप, पुण्य-पाप की कल्पनाएँ, उन्हें मैं छोड़ता हूँ । आहाहा ! कहो, समझ में आया या नहीं । टोलिया ! नये लोगों को यह... इसमें सम्प्रदाय की बात की एक भी बात नहीं आती । उसमें तो कहे, एकेन्द्रिय की दया पालो, छह काय की दया पालो, छह परबी ब्रह्मचर्य पालो, रात्रिभोजन त्याग करो, अपवास करो, यह तो सब राग की क्रिया की बातें हैं । आहाहा ! यह कहीं आत्मा-बात्मा नहीं और वहाँ इसमें धर्म-बर्म नहीं । यहाँ यह कहते हैं । आहाहा !

मुमुक्षु : धर्म न हो तो कुछ नहीं, अधर्म तो नहीं न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अधर्म है । धर्म नहीं, वह अधर्म है । यहाँ तो कड़क हो या यह हो । पर की दया पालने का भाव अधर्म है । पुकार करके कहते हैं । यह बात कहाँ गुप्त रखी है ? क्योंकि परपदार्थ को आत्मा स्पर्श नहीं कर सकता । कोई भी परपदार्थ स्व-रूप से है और पर-रूप से नहीं । पररूप से नहीं वह भी पदार्थ उसके रूप से है और पररूप से नहीं, इसलिए कोई पदार्थ पर को स्पर्श करे और पर का रक्षण करे या मारे, ऐसा तीन काल में नहीं होता । आहाहा ! ऐसी बात तो कभी सुनने को मिलती नहीं । जाना कहाँ बेचारे को ? आहाहा ! ऐसी बात है ।

भवभव का सुख वह सब मैं आत्मशक्ति से नित्य सम्यक् प्रकार से छोड़ता हूँ;... आहाहा ! यह छूटा वह छूटा, अब मुझे राग होनेवाला नहीं है, ऐसा कहते हैं । मेरा नाथ भगवान वीतरागदेव ने जो आत्मा कहा, तीन लोक के नाथ अरिहन्त ने जो आत्मा कहा, उसमें कोई राग-द्वेष मोह है नहीं । नवतत्त्व में पुण्य-पाप, आस्रव-बन्धतत्त्व भिन्न है, ज्ञायकतत्त्व भिन्न है । नव तत्त्व में ज्ञायक जाननहार भिन्न है । पुण्य-पाप, राग-द्वेष, वह भिन्न

तत्त्व है। भगवान ने ऐसा कहा, ऐसा मैं मानता हूँ और अनुभव करता हूँ तो मैं राग-द्वेष को छोड़ता हूँ। आहाहा! ऐसी बात आयी। है ?

मैं आत्मशक्ति से नित्य... वापस ऐसे। अशुभ को छोड़ना और शुभ को करूँ, ऐसा नहीं। शुभ और अशुभ दोनों विकार हैं। आहाहा! दोनों को छोड़ता हूँ। आहाहा! है ? (और) जिसका निज विलास प्रगट हुआ है,... भगवान आत्मा वस्तु है, सत्ता है, मौजूदगी चीज़ है तो उसका स्वभाव भी सत्ता त्रिकाल है। वह त्रिकाल वस्तु है तो स्वभाव भी त्रिकाल है। उस त्रिकाल वस्तु के विलास में... आहाहा! निज विलास प्रगट हुआ है,... यह जो राग में मैं सुख मानता था, पुण्य में सुख मानता था, वह सब नाश होकर निज विलास प्रगट हुआ। अपने आनन्द का स्वरूप भगवान, उस पर नजर करने से आनन्द का विलास पर्याय में-दशा में प्रगट हुआ। आहाहा! अति संक्षिप्त में बहुत भरा है।

जो सहज परम सौख्यवाला है... प्रभु कौन है ? स्वाभाविक आनन्दस्वरूप आत्मा है। यह तो तुम्हारे भोग, स्त्री, पुत्र, पैसा। तुम कल्पना करके भोग में सुख माने, वह तो जहर का प्याला है। आहाहा! जहर का प्याला पीवे और माने कि हम सुखी हैं। दुःखी है, जहर है। अमृत का सागर तो भगवान आत्मा है। आहाहा! है ? देखो न! जो सहज परम सौख्यवाला है... आत्मा। स्वाभाविक परम सुख... स्वाभाविक परम सुख। आहाहा! यहाँ तो जरा जहाँ चार सेर घी पिलाया हुआ मैसूरपाक मिला और उसमें पतरवेलिया मिले, अरबी के पान आते हैं न ? तेल में ऐसे टुकड़े करके तले और लड्डू... आहाहा! अन्दर से उत्साह आ जाए। मानो अन्दर क्या खाता हूँ ? धूल खायी है। आहाहा!

आत्मा का स्वभाव। परम सौख्यवाला है... अन्दर है ? आत्मा का स्वभाव परम सौख्यवाला है। तथा जो चैतन्यचमत्कारमात्र है,... आहाहा! और वह चैतन्यचमत्कारमात्र है। चमत्कार है। अपने क्षेत्र में रहकर सर्व को जाने, पर की अपेक्षा बिना सर्व को जाने, ऐसा चैतन्यचमत्कार है। आहाहा! चैतन्यचमत्कारमात्र है, उसका (-उस आत्मतत्त्व का) मैं सर्वदा अनुभव करता हूँ। आहाहा! राग का अनुभव नहीं। विकार के अनुभव में भवताप मिलेगा। जिसमें दुःख मिलेगा। आहाहा! इसलिए उसे छोड़कर मैं सर्वदा... सर्वदा अनुभव करता हूँ। आत्मा आनन्द है, सुख है, उसका मैं अनुभव करता हूँ। यह धर्म और यह मोक्ष का मार्ग है। बाकी सब बातें हैं। (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)